मधुलिका

सुरेन्द्रनाथ 'नूतन'

मधूलिका

□

कविताओं और गीतों का संकलन

सुरेन्द्र नाथ 'नूतन'

अतुल प्रकाशन

इलाहाबाद

मधूलिका
सुरेन्द्र नाथ 'नूतन'

Madhulika

(a collection of poems)

by

Surendra Nath 'Nutan'

लेखक : सुरेन्द्र नाथ 'नूतन'

प्रकाशक : अतुल प्रकाशन
३ बी० के० बनर्जी मार्ग
नया कटरा, इलाहाबाद–२

आवरण : इम्पैक्ट, इलाहाबाद ।

मुद्रक : जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस,
इलाहाबाद ।

संस्करण : प्रथम, १९९२

मूल्य : चालीस रुपया

प्रस्तावना

मधूलिका, श्री सुरेन्द्र नाथ 'नूतन' की छोटी-बड़ी कुल चालीस कविताओं का संग्रह है। इन रचनाओं की मूल प्रेरणा जीवन के प्रति ऐसी अकम्पित आस्था है जो परिस्थितियों की विविध प्रतिकूलताओं के प्रभंजन में भी कभी मलिन ज्योति नहीं होती। जीवन के प्रति ऐसी अटूट आस्था और ऐसा दृढ़ विश्वास संघर्षमय जीवन की कटु वास्तविकता से जूझ कर निकलती है और कवि को खिलाड़ी की वह जीवन दृष्टि प्रदान करती है जो हार और जीत को समान रूप से ग्रहण करती है। खिलाड़ी मानसिकता की वही तटस्थता कविता में पूजागीत, अभ्युदय, निर्माण की बेला, ममता, अगली पीढ़ी, श्रमदेवी, कपोत-कपोती तथा विविध गीतों के रूप में प्रतिफलित हुई है।

'नूतन' की आरम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा के माध्यम से हुई। कालान्तर में उन्होंने अपने उस्ताद मौलवी साहब से मीर, ग़ालिब, सौदा जैसे कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया और स्वाध्याय से जोश मलीहाबादी, ज़िगर मुरादाबादी, फ़िराक़ गोरखपुरी, मज़ाज़ लखनवी, फैज अहमद फ़ैज, साहिर लुधियानवी और कतील सफाई की रचनाओं का आस्वादन किया। इलाहाबाद के अपने विद्यार्थी जीवन में उन्हें फिराक़ गोरखपुरी के सम्पर्क में भी आने का अवसर मिला जिससे उन्हें जीवन की विषम एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समाज के प्रति स्वस्थ एवं प्रगतिशील जीवन दृष्टि बनाये रखने की प्रेरणा मिलती रही। निराशाजनक स्थितियों में भी आशा की ज्योतिकिरण की एक झलक पा लेना व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के लिए शुभलक्षण माना जाता है जो इस संग्रह के समस्त गीतों में विविध रूपों में मुखरित हुआ है। हिन्दी-कवियों में नूतन के सबसे प्रिय कवि जयशंकर प्रसाद रहे हैं। मधूलिका के कथ्य और शिल्प में हिन्दी की अपनी विशिष्टता के अतिरिक्त कहीं-कहीं पर उर्दू का सहज प्रभाव परि-

लक्षित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए इस गीत का तेवर देखिए—

ठहर, शराब की दो घूंट अभी बाक़ी है।
अभी मदहोश नहीं मैं, थका न साक़ी है।।

यह सच है, रूप की सीमा के पार हूँ अब मैं
जिसे न तन बजाये वह सितार हूँ अब मैं
बहार झूम-झूम जिसके साथ गाती है,
वही भ्रमर हूँ, शलभ हूँ, खुमार हूँ अब मैं

अभी तो सिन्धु की गहरी उछास बाक़ी है।

अथवा

तुमने आज मुड़ के देखा है
भाग्य ने खींची नयी रेखा है।
देख कर भी न देखने वाले
क्या तेरा प्यार भी एक धोखा है?

हिन्दी कविता के इतिहास में रहस्यवाद और छायावाद के अवसान काल और प्रगतिवाद के उन्मेष काल की सन्धिवेला में नूतन के कवि ने अपनी आँखें खोली थीं, यद्यपि उसने अपने को किसी वाद विशेष के वृत्त में आरोपित नहीं किया फिर भी रहस्यवाद-छायावाद कालीन अभिव्यञ्जना की झलक अधिकांश गीतों में दिखलायी पड़ती है। मनोहारिणी चित्रकल्पनायें, आशा, आस्था, विश्वास, जिज्ञासा, अस्मिता की ज्योति से रंजित भावमयी रचनाओं की इस कृति में प्रधानता है। स्थल-स्थल पर प्रगति की प्रेरणा से उद्भूत पंक्तियाँ दृष्टिपथ में आती हैं—

साँझ हो गयी, थको न पंछी
पा न सको यदि आज बसेरा।
मिल ही जायेगा जीवन में
कभी रात का छोर सबेरा।।

अथवा

आशा के दो तारों पर ही
मानव का स्वर प्राण गा रहा।
सुख दुःख की सरिता में
निज निज नय्या खेता चला जा रहा॥

नूतन जी की कविता की मुख्य प्रवृत्ति स्वस्थ रोमांटिक वृत्तियों को आत्मसात करके चलती है। प्रेम उनकी रचना की मूल संवेदना है। ऐसा कोई भी गीत नहीं है जिसमें प्रेम अपने विविध रूपों में उद्घाटित न हुआ हो। कवि ने कल्पना और भावुकता के सहयोग से इन्द्रधनुष की सतरंगी चिरपरिचित होने पर भी निरन्तर नवीन सी लगने वाली छटा की भाँति सौन्दर्य का मनमोहक जगत निर्मित कर दिया है। यह नयी आशा और नूतन प्रेरणा से निर्मित ऐसा 'काव्य-संसार' है जिसमें—

मृत्यु बन जिन्दगी मुस्कराने लगी
मौन कब तक रहे हँस पड़ा है प्रलय
आपदाओं में झंझा बना है मलय।
नाश के पाश में आश बँधती हुई
छेड़ती विश्ववीणा पर गंभीर लय॥
पीर भी साँस बन गुनगुनाने लगी।

जीवन के यथार्थ से प्रसूत कवि का अपना अनुभव है जो लक्षित करता है कि—

यहाँ अधखिली कलियों के
आँखों में भी घात है।
जहाँ नाम आया जीवन का
वही मरण की बात है॥

स्वर लहरी सरगम बन बजले कैसे टूटे तार में
व्यर्थ बनी है सुख की सीमा दुःख के कारागार में।

'प्रगति-गीत' में आगे, निरन्तर आगे बढ़ने का भव्य उद्बोधन है जिसको सुनकर कोई ठहर ही नहीं सकता—

उमड़ रही है सिन्धु में लहर प्रलय की बाँह में
बढ़ रहा है तारकों का दल प्रगति की छाँव में
बिहँस रहा पवन कि सूर्य चाँद बढ़े जा रहे
बन्धनों को तोड़कर परिन्द उड़े जा रहे।
बरस रही सुधा कि पात पात है नहा रहा
छेड़ भैरवी है भृङ्ग डाल डाल गा रहा।
निर्धनों की प्रीति को दुलारते बढ़े चलो
इतना ही नहीं
जागरण हुआ कि रात्रि दुःख की चली गयी
आवरण हटा कि आज कालिमा छली गयी।
विनोद हर्ष हँस रहे कि दुःख लड़खड़ा रहा
मुक्त भाव से किसान बंसरी बजा रहा।
झूमता गगन में बादलों का दल बढ़े चलो

'मधूलिका' में प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं का अपना वैशिष्ट्य है। वर्षा पर दो गीत हैं बसन्त पर एक। वर्षा के 'काले बादल' कवि के लिए दुःख के सन्देश नहीं लाते। बादलों में कितने ही रहस्य कवि-मन में जिज्ञासा उत्पन्न करने के साथ ही साथ उसके जीवन को गति प्रदान करते हैं—

छलक रहे थे नयन
अधर पर थी मुस्कान की रेखा।
मैंने बाल उठाते उसको
इस बादल में देखा
झलक गया गोरा शरीर
जो था सावन में लिपटा
जैसे पवन, उसे उपवन में
छू लेने को लपका ॥
गति लाया है, जीवन का सम्भार लाया है।
काले बादल नहीं, मेरा संसार आया है।

फिर तो बादलों को झिमिर-झिमिर बरसने का निमंत्रण भी कवि दे डालता है—

सिहर सिहर लतिका लहराई
दमक दमक दामिनि शरमाई,
आम की डाली कुन्ज कुन्ज में
उपवन में हरियाली छाई।

कुमुद-कमल की पंखड़ियों पर छिटकी जलकनियाँ मिल सौरभ
झिमिर झिमिर बरसो छहरो नभ।

ऋतुराज का अपना अलग ही प्रभाव है—

हीरे की कनी
और सोने बिखराये गए हैं खेतों में
बोये गए हैं
कंठों में गीत
पलाश
रजनीगन्धा, गुलमुहर
सभी बन गए हैं मीत
तितली के पंखों पर
सजाये गए हैं सपने
दूर कहीं उठती अलाप
एक थाप
शायद किसी वासन्ती का आगमन है

धार्मिक पिता और उनकी सहधर्म सहचरी के क्रोड में पोषित बचपन प्रौढ़ावस्था में भक्ति भावना का उद्वेलन असहज नहीं है। इस संग्रह के आरम्भ की वन्दना, पूजागीत तथा देवी से एक प्रश्न जैसी रचनाएँ शक्ति भावना से प्रेरित हैं। देवी के समक्ष कवि अपने सामाजिक जीवन की समस्यायें प्रस्तुत करता है—

जीर्ण शीर्ण व्यथित सकल
क्यों मनुष्य आज विकल

क्यों है झेलता वह आज
दुःख का असह्य भार
क्यों है आज हो रही ऐसी सबकी भर्त्सना।
द्वार पर तेरे खड़ा हूँ लिए भक्ति भावना

देवी की ओर से उसका तत्काल उत्तर भी प्राप्त हो जाता है—

स्वार्थवश ही करता आज
मनुज जग में सारे काज।
चाहे पूजता हो देव
या कि पढ़ता हो नमाज़।
फिर—
ढोंग तीर्थयात्रा को ही समझ रहा है कर्म
पाठ महाकाव्य का ही समझ रहा है धर्म।
रूढ़ियों में बँधा आज करता घूस लेकर ब्याह
तोड़ दिए उसने नियम, छोड़ दी पुरानी राह ॥

और

ज्ञान रहित, व्यथित विकल
छोड़ दी है साधना।
इसीलिए आज वह
पा रहा है ताड़ना ॥

देवी का उत्तर सुनकर अपने समाज और देश को कवि जागरण का सन्देश भी देता है—

आज जागरण की वेला है, जागो दिव्य प्रकाशी
जाग रहे नक्षत्र गगन में, जाग रहा अविनाशी

मगर इस पतित समाज के कानों पर जूँ तक तो रेंगती नहीं।
अगली पीढ़ी पर व्यंग्य का एक हलका स्पर्श है—

इसके हाथों में हिंसा
पगों को दलन
पेट को अनर्गल पचाने की शक्ति
जिह्वा में कटुता
बुद्धि में कुटिलता
संस्कार में मक्कारी
आचरण में निर्लजता भर दें।

'प्यास' में मानव के संकुचित और व्यापक 'स्व' का दार्शनिक धरातल पर संतुलन दिखलाने का श्लाघनीय कवित्वपूर्ण प्रयास किया गया है—

प्यास सीमित एक कन में
क्या करूँगा सिन्धु लेकर
प्यास व्यापक अखिल जग में
क्या करूँगा विन्दु लेकर
प्यास अविरल
प्यास साधन
प्यास तृष्णा
क्या करूँ सौ वर्ष लेकर....
तृप्ति लेकर सिद्ध लेकर

मधूलिका के सारे गीत कवि के स्वस्थ मनोवृत्ति को उजागर करते हैं। रचनाओं में विषयों की विविधता है? अभिव्यक्ति की शैली भी एकरसता से बोझिल नहीं है। कहीं गीत हैं, कहीं मुक्तक, कहीं मुक्तछन्द तो चतुष्पदी। मधूलिका के गीतों में जीवन की आशा और निराशा, आस्था और विश्वास, उल्लास और विषाद, सौन्दर्य प्रेम और स्वतंत्रता के पश्चात् निर्माण की प्रेरणा बड़े ही सहज और स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई हैं। नूतन जी ने निराशा के बीच से आशा और दुःख के भीतर से सुख को प्राप्त करने की चेष्टा की है। दुःख-पीड़ा अभाव और संघर्ष से भरा जीवन कवि को अपनी विध्वंसात्मक शक्तियों से पराभूत नहीं कर

पाया है वरन् उनसे निरन्तर संघर्ष करके उत्तरोत्तर विकास के मार्ग पर अग्रसर होते रहने की उसे प्रेरणा ही मिलती है ।

मधूलिका के गीत अपने रंग और सुगन्ध से कविता प्रेमियों का मन मोहित करेंगे, इस विश्वास के साथ इस काव्यकृति का स्वागत है । आशा है भविष्य में नूतन जी अपनी अनेक रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते रहेंगे ।

जुलाई १९९२

डा० अविनाश चन्द्र
प्रवाचक एवं अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राकृत अध्ययन विभाग
सी० एम० पी० डिग्री कालेज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

समर्पण

जीवन की कड़ी धूप तथा शीतल छाया में जो मेरे साथ
है उसी अपनी अर्धांगिनी कुसुम को सस्नेह ।

रचना-क्रम

वन्दना

वन्दना है आज तेरे द्वार
अर्चना में उठ रहे हैं ज्वार।
मातु मेरी, कर अकिञ्चन
प्रार्थना स्वीकार ॥

□

पूजा-गीत

बन्दव तव शुभ स्वभाव
दलन दुख - दारुणी
कीर्तिविमल, सुयश धवल
ज्योतिपुञ्ज - मानवी
छार छार मायाकरण
क्लेश दुःख - हारिणी

× × ×

करुणामयी, मृगनैनी
द्रवित भव्य - भावनी
हे पुनीत - हे प्रतीत
स्नेह दिव्य - दामिनी
जन, गण, मन सफल करो
ऋद्धि, सिद्धि - वाहिनी

□

गीत

धीरे से सरिता की लहरों से खेलो प्रिये, ।
कहीं टूट जाये न सरि का कगार रे ।।

घुँघराले - बादल घिर आये ।
चन्दा है झाँक रहा आड़ से ।।
कल-कल, कर, मर - मर कर निर्झर ।
गिरता है मन के पहाड़ से ।।

जीवन में इतनी न खुशियाँ बिखराओ प्रिय ।
कहीं टूट जाये न मन का सितार रे ।।

धानी रँग चुनरी, पग मेंहदी रचाये ।
बैठी है सावन में लट को बिखराये ।।
व्याकुल सी, खोई सी, सुध-बुध बिसराये ।
कैसे सकुचीली फिर साजन तक जाये ।।

दो पल, कर अपलक सुख इतना न घोलो प्रिय ।
कहीं रूठ जाये न छिन का शृङ्गार रे ।।

□

गीत

ठहर, शराब की दो घूँट अभी बाक़ी है।
अभी मदहोश नहीं मैं, थका न साक़ी है॥

यह सच है रूप की सीमा के पार हूँ अब मैं।
जिसे न तन बजाये वह सितार हूँ अब मैं॥
बहार झूम-झूम, जिसके साथ गाती हो।
वही भ्रमर हूँ, शलभ हूँ, खुमार हूँ अब मैं॥

अभी तो सिन्धु सी गहरी उछास बाकी है।
अभी मदहोश नहीं मैं, थका न साक़ी है॥

अभी मैं चन्द्रमुख में, लाख चाँद देखूँगा।
उठूँगा छोड़ के धरती प्रकाश छू लूँगा॥
जहाँ से गा रहे हैं देव और किन्नर गण।
वहीं से जिन्दगी में ज्योति-आस भर लूँगा॥

अभी तो पीने, पिलाने की साध बाक़ी है।
अभी मदहोश नहीं मैं, थका न साक़ी है॥

□

गीत

माँ के बिखरे वैभव से संसार सजाना है
बिखर गये है नभ में तारे पंक्ति लगाना है

मर, मर, झर, झर से निर्झर के
ज्योति जगाना है
घर, घर, नगर, डगर, पौरों में
दीप जलाना है

अरी कोकिले ठहर, तुझे संगीत सिखाना है
बिखर गये हैं नभ में तारे पंक्ति लगाना है

अस्त, व्यस्त बादल, तुझको
गतिमान बनाना है
दीन हीन भूखे जग का—
संताप मिटाना है

आज भ्रमित हो रही धरा को गीत सुनाना है
धरती से उड़ कर चन्दा पर सृष्टि रचाना है।

□

गीत

तुम कठोर पाषाण नरम है प्रीति भरा नवगीत।
मैंने अर्पण में ही देखा है जीवन की जीत॥

चूर चूर, शीशे सा उर ले।
तुमने क्षण में तोड़ दिया है॥
भूल हुई क्या मुझसे जो।
तुमने मुख मोड़ लिया है॥

मेरे ही नैनों से टप, टप।
यह सावन की बूँद पड़ रही॥
अवसादित, निरझरणी, झर झर।
व्याकुलता के अंक लिख रही॥

क्या जीवन में मृत्यु सजाना ही प्रेमी की रीत।
तुम कठोर पाषाण, नरम है प्रीति भरा नवगीत॥

साँझ हो गई, थको न पंछी।
पा न सको यदि आज बसेरा॥
मिल ही जायेगा जीवन में।
कभी रात का छोर सबेरा॥

आशा के दो तारों पर ही।
मानव का स्वर, प्राण गा रहा॥
सुख, दुख, की सरिता में।
निज, निज, नय्या खेता चला जा रहा॥

इस जग की ही रचना थोथी मिला न दो दिन मीत।
तुम कठोर पाषाण नरम है प्रीति भरा नवगीत॥

□

गीत

व्यर्थ बनी है सुख की सीमा, दुख के कारागार में।
कहीं न सुख होता तो दुख क्यों पाता मन संसार में॥

मुरझा जाता चन्द्र-फूल खिल।
यह अम्बर का प्रात है॥
सिसक, सिसक कर नैन सो गये।
यह धरती की रात है॥

यहाँ अध-खिली कलियों के।
आँखों में भी घात है॥
जहाँ नाम आया जीवन का।
वहीं मरण की बात है॥

स्वर लहरी कैसे सरगम बन, बजते, टूटे तार में।
व्यर्थ बनी है सुख की सीमा, दुख के कारागार में॥

पूनम झूल रही झूले में
कोमल, कोमल गात है।
कब टूटेगी डोर डाल से
पगली को अज्ञात है॥

खुशियाँ झूल रहीं डालों पर
लह, लह, मन, मन पात है।
ऊपर जा जब गिरा तभी तो
जल बन गया प्रपात है॥

कैसे इतना भार ढो सके, टूटा मन संसार में
व्यर्थ बनी है सुख की सीमा दुख के कारागार में

□

वर्षा-गीत

झिमिर झिमिर बरसो छहरो नभ।

सिहर सिहर लतिका लहराई
दमक, दमक, दामिनि शरमाई
आम की डाली कुंज कुंज में
उपवन में हरियाली छाई
कुमुद, कमल की पँखुड़ियों पर
छिटकी जलकनियाँ मिल सौरभ

झिमिर झिमिर बरसो छहरो नभ ॥

घहर, घहर बादल घिर आये
फहर, फहर आँचल उड़ जाये
प्रिय के देश के पंथ की रेखा
आँखों में बन, बन मिट जाये
अवनी, अम्बर को लख कहती
जीवन में मिलना है दुर्लभ
झिमिर झिमिर बरसो छहरो नभ ॥

□

गीत

मृत्यु बन जिन्दगी मुस्कराने लगी।

मौन कब तक रहे हँस पड़ा है प्रलय
आपदाओं में झंझा बना है मलय।
नाश के पाश में आश बँधती हुई
छेड़ती विश्व-वीणा पर गम्भीर लय ॥

साँस भी पीर बन गुनगुनाने लगी।
मृत्यु बन जिन्दगी मुस्कराने लगी ॥

जा रहा है चन्द्रमा छोड़ तारों का दल
नैन निःशब्द, नीरव, निशा के सजल
बाटिका में रुपहली कली दुख भरी
चाहती है सलोनी मिलन एक पल

रात भी प्रात में झिलमिलाने लगी।
मृत्यु बन जिन्दगी मुस्कराने लगी ॥

□

गीत

आज मेरी हार।

× × ×

तिमिर में तिरती हुई—
आशा अकेली।
मैं नहीं विश्वास,
ठगनी, ठग के बोली—
मैं निराशा सी,
रूधिर की धार॥

× × ×

मौन वीणा के बजे स्वर आज सारे
शलभ से लगते—
गगन के पुष्प तारे,
हर्ष अब बनता—
हृदय का भार।

× × ×

निशा नीरव निबिड़ हाहाकार करती
शान्त सब कुछ, किन्तु
शान्ति, अशान्ति रहती।
दिवस खो जाता—
मधुर सुधि में किसी के
रात दिन मेरी दशा यों ही बदलती।
क्यों मुझे अभिशाप सा यह प्यार ?
आज मेरी हार !!

□

गीत

धरती का तृण तृण प्यासा है आज तुम्हारी प्यास में !
सूर्य चन्द्र अब तक जीवित हैं एक तुम्हारी आस में ।।

शीतल जल के कोमल उर पर ।
नलिनी पति का बास रे ।।
लोल, लोल चंचल लहरों की ।
फिर क्यों ऊर्ध्व उसाँस रे ।।

पुलिनों से टकरा कर कन कन बिखर रही हैं त्रास में ।
धरती का तृणा तृण्णा प्यासा है आज तुम्हारी आस में ।।

जीवन तरु अब सूख रहा है ।
यह दुर्दिन की घात है ।।
पर तेरी मुस्कान हमेशा ।
मेरा पुण्य प्रभात है ।।

ढूँढ़ रही बावली कोकिला जीवन आज विनाश में ।
धरती का तृण तृण प्यासा है आज तुम्हारी आस में ।।

□

काले बादल

मुझसे मिलने मेरे प्रिय का प्यार आया है।
काले बादल नहीं मेरा संसार आया है !!

छलक रहे थे नयन—
अधर पर, थी मुस्कान की रेखा
मैंने बाल उठाते उसको
इस बादल में देखा
झलक गया गोरा शरीर
जो था सावन में लिपटा
जैसे पवन, उसे उपवन में
छू लेने को लपका

गति लाया है, जीवन का संभार लाया है।
काले बादल नहीं मेरा संसार आया है !!

घट लेकर चल पड़ी नवेली
रुनझुन की झंकार है।
गहरे पानी में ही गागर-
पाती प्रेम की धार है
रिमझिम, रिमझिम मेह बरसता
मोती का शृंगार है
बुलबुला कहीं फूट न जाये
तेरी पैनी धार है

कुछ कहने को तुझसे यह अधिकार लाया है।
काले बादल नहीं मेरा संसार आया है !!

□

मेरा तट

छुओ न मेरा तट लहरो,
जा कहीं सुकोमल गान भरो !!
× × ×
मेरी ही तृष्णा मुझको,
सरिता के पास सुला जाती है।
मेरे ही खातिर मलयानिल,
आकर धूल उड़ा जाती है !!
मेरे ही उर पर,
राका-परियाँ शृंगार किया करती हैं
मेरे ही दुख से,
धरती पर अश्रु-ओस
टपका करती हैं
मेरे निशीथ में, विद्युत बन
मेरा न अधिक अपमान करो ।।
छुओ न मेरा तट लहरो जा कहीं सुकोमल गान भरो !!
× × ×
तिरता, तिरता,
उठता, गिरता
सरि के पार चला जाता हूं !
कभी-कभी अपनी परछाई—
से ही मैं घबरा जाता हूं
स्वप्नों का संसार बसा के—
धीरे, धीरे, सो जाता हूं !
छुईमुई की नरम डाल हूं,
छूते ही मुरझा जाता हूं
इस निर्झर में झर-झर स्वर भर अब न मुझे लयमान करो।
छुओ न मेरा तट लहरों जा कहीं सुकोमल गान भरो ।।

□

प्रगति-गीत

पुकारती है आज युग की चेतना बढ़े चलो।

भारती खड़ी खड़ी है आरती उतारती।
दसों दिशा सुहावने श्रृंगार है सँवारती॥

गुनगुना के जिन्दगी के गीत तुम बढ़े चलो॥

उमड़ रही है सिन्धु में लहर प्रलय की बाँह में।
बढ़ रहा है तारकों का दल प्रगति की छाँव में॥
बिहस रहा पवन कि सूर्य, चाँद बढ़े जा रहे।
बन्धनों को तोड़ के परिन्द उड़े जा रहे॥
बरस रही सुधा की पात पात है नहा रहा।
छेड़ भैरवी है भृङ्ग डाल डाल गा रहा॥

निर्धनों की प्रीति है दुलारती बढ़े चलो।
पुकारती है आज युग की चेतना बढ़े चलो॥

जागरण हुआ कि रात्रि दुख की चली गई।
आवरण हटा कि आज कालिमा छली गई॥
बिनोद हर्ष हँस रहे कि दुःख लड़खड़ा रहा।
मुक्तभाव से किसान बंशरी बजा रहा॥
देव अप्सरा हैं गाँव गाँव को सजा रहीं।
रूप अङ्ग में बसा के हैं लजा रहीं॥

झूमता गगन में बादलों का दल बढ़े चलो।
पुकारती है आज युग की चेतना बढ़े चलो॥

□
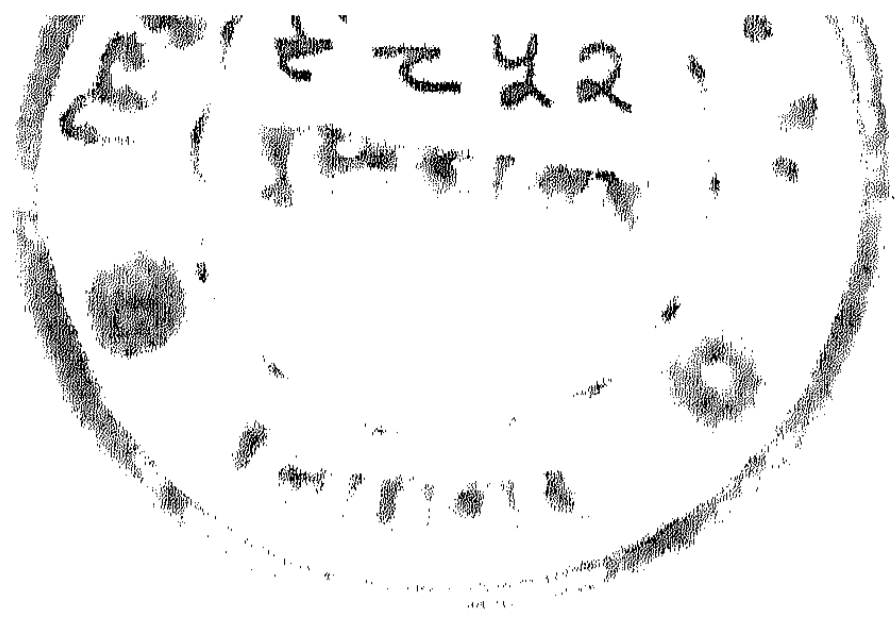
बापू के प्रति

प्रखर-तेज, गम्भीर, अडिग, अविचल, ब्रत-धारी
अटल, अगम्य, महान, सिन्धु सा वह हितकारी
दृढ़-संकल्प, समर्थ, साधना करके न्यारी
चला छोड़, मुँह मोड़, तोड़ विधि माया सारी।

□

गीत

लुट जाना सीखा जीवन में।
तुमने विराग सीखे ही नहीं ॥
क्या कहूँ अली तुमसे, तुमने।
विह्वल वसंत देखे ही नहीं ॥

उन्मत्त, मस्त जीवन अविरल।
तुमने महलों में जा देखे ॥
पर टूटी कुटिया के आँसू।
उजड़े सुहाग देखे ही नहीं ॥

दो दिन जीवन, लोभी भौंरें !
कर नेह प्रेम लेखे ही नहीं ॥
रसपान किया जा फूलों के।
तुमने पराग देखे ही नहीं ॥

ना बनती हो तो बन जाये।
संसार वही तुमने देखे ॥
पर बनकर जिसकी बिगड़ गई।
ऐसे अभाग्य देखे ही नहीं ॥

□

गीत

अब न पूछ कि अन्त क्या है?
दे कलश दो चार भर भर
छलकती यौवन की हाला।
झूम कर पीने दे प्रेयसि
इन नयन की मधुर हाला
इस जवानी के 'शरद' की।
अब न पूछ वसन्त क्या है॥

× × ×

छलकती झिलमिल छटा,
छवि, झूमती है॥
भर के आँचल, आज कोई
सोम सुषमा बेचती है॥
अग्रसर होकर लुटा दे
दो सुमन ए नैन अपने॥
अब न पूछ विरक्ति क्या है
या कि साधू सन्त क्या है।
पूछ न अब अन्त क्या है।

□

गीत

भटक रही जीवन की लहरी, जैसे आज कगार पा गयी।
या फूलों के किसी देश में, घूँघट काढ़ बहार आ गयी॥

मुस्काया धरती का कन-कन
अम्बर में सौ दीप जल गये
युग युग से कोरे नैनों में
अनगिन, मधुमय स्वप्न बस गये

× × ×

लहराई मन की हरीतिमा
मृदुल कमल, कचनार खिल गये
एक एक करके धीरे से
पाँचों, चन्दन द्वार खुल गये

कजरारे बादल की डोली में सज सरस फुहार आ गयी।
या फूलों के किसी देश में घूँघट काढ़ बहार आ गयी॥

दूर कहीं, दो खग, मृदु बोले।
बहा पवन, रस में, रस घोले॥
किरणों ने गलबहियाँ डालीं।
झूला जीवन प्रेम हिण्डोले॥

× × ×

ना जाने किस नयन कोर से।
कसक मीत अनजान भर गये॥
अमित तृषा का सागर लख कर।
एक बूंद बस तृप्ति दे गये॥

पपिहे सी प्यासी धरती पर सरस बदरिया उमड़ छा गयी।
या फूलों के किसी देश में घूँघट काढ़ बहार आ गयी॥

□

गीत

चित्र वही है किन्तु चितेरे ने कुछ ऐसा रंग भर दिया।
पारस के हाथों ने छू कर इस लोहे को स्वर्ण कर दिया।।

मनुहारों की मृदु बेला में।
अर्चन के दो फूल खिल गये।।
माटी के ही तन में, क्षण में।
स्नेह, बाति, मिल, दीप बन गये।।

× × ×

भँवरों के सँग नाचीं लहरें।
पुलिन, कूल छविमान बन गये।।
सत्य और शिव मिल सुन्दर से।
ज्योतिर्मय भगवान बन गये।।

साँसों की यह वीणा रच कर, स्वर सरगम के सँग कर दिया।
चित्र वही है किन्तु चितेरे ने कुछ ऐसा रंग भर दिया।।

कुंकुम सज गुलाल दे माथे।
रजत कल्पना का रथ साधे।।
दुख सुख के पथ पर चल निकली।
चूर चूर कर पथ के बाधे।।

× × ×

हँसा चाँद मुस्काये तारे।
आलोकित हर छोर हो गये।।
गंगा जमुना मुझे छू गई।
जब से स्नेहिल कोर हो गये।।

पग पग पर दीवाली रच कर, अन्धकार को भंग कर दिया।
चित्र वही है किन्तु चितेरे ने कुछ ऐसा रँग भर दिया।।

□

गीत

मेरे मन मुझको ले चल उस ओर जहाँ पर—
कलप कलप कर दिन होते हों तड़प तड़प कर रात।

वहीं सभी साथी होंगे—
दारिद्र भूख वेदना।
जीवन का हर हर्ष छोड़—
पड़ता हो जहाँ कलपना॥

अंधियारे का राज जहाँ हो
तम की निष्ठुर घातें।
जहाँ चकोरी की आँखों से
बहती हों बरसातें॥

जहाँ मिलन की बात छोड़ कर सदा विरह की बात।
कलप कलप कर दिन होते हों तड़प तड़प कर रात॥

जहाँ सूर्य ढलता ही रहता
मलिन चाँदनी रहती
तारों को बिखेर कर रजनी
करुण कथा सी कहती।

कामिनियों के नूपुर की
झंकार मन्द हो
जहाँ हृदय में ही सारे
अरमान बन्द हों

ठिठुर ठिठुर कर जहाँ पीत पड़ गये मनुज के गात।
मेरे मन मुझको ले चल उस ओर जहाँ पर..........॥

□

अभ्युदय

उत्थान, पतन का बोझा
जब लेकर, युग थक जाता।
तो हार पटकता उसको,
फिर स्वयं प्रलय बन जाता।
पर यही प्रलय, फिर आगे—
निर्माण रूप है धरती।
प्रमुदित वसुधा, सुध, बुध खो,
हर्षित हो, उसको वरती॥

× × ×

पर इस वरने में, जलते
लाखों दीपक, बुझ जाते,
कितने, आ भाग्य-पटल से
हँस, हँस कर हैं टकराते।
कितनी माओं की गोदी,
असमय, सूनी, हो जातीं
कितनी बहनों की खुशियाँ,
पत्थर पर हैं पिस जातीं
कितने शिशु, इस आहुति में
हँस, हँस कर बलि चढ़ जाते।
कितनी बहुओं के सुन्दर
सिन्दूर सुभग पुछ जाते।

× × ×

पर ऐसे प्रलय दिवस का
अवसान, मधुर होता है

हँसता है वह ही खुलकर,
जो फूट रोता है।

× × ×

यह अभ्युदय काल हमारा—
हम बन्धन काट चुके हैं।
कर सिद्ध, साधना अपनी,
युग-धारा, मोड़ चुके हैं

× × ×

अम्बर से, अवनी तक हम
दृढ़ निर्माण करेंगे
जर्जर मानवता का अब
दुख से हम त्राण करेंगे
युग-लहरी काट सके ना
ऐसे ऐसे पाषाण बनेंगे।

□

निर्माण की बेला

आज जागरण की बेला है, जागो दिव्य प्रकाशी।
जाग रहे नक्षत्र गगन में, जाग रहा अविनाशी॥

× × ×

उठो आर्यावर्तवासियो करना है निर्माण,
छोटे, छोटे
हरे, लाल, पीले फूलों का पुंज,
लता समूहों से वेष्ठित हो
द्वार बनाओ कुंज।
वहीं बीच में एक सरोवर—
बिचरें, हंस मराली,
कुहू, कुहू कर कोयल बोले,
बैठ आम की डाली।
जहाँ मधुमती बहे प्रभाती,
प्रीति-युक्त, मधुगान
थके बटोही—
जहाँ साँझ को, बैठ—
छेड़ दें तान।
हरी हरी हो दूब धरा पर
ऊपर लता, वितान
वहीं जिन्दगी करवट लेकर
खोले, नये बिहान।

× × ×

सपनों की रख
शिला-मूर्ति
सुख, दुख के भूले गान,

सुन्दर, शिव, मिल सत्य प्राण से
बन जायें, भगवान ।
प्रकृति, विभव का वैभव
जग का
कर दे,
दुख से त्राण ।
उठो आर्यावर्तवासियो करना है निर्माण ।।

□

प्यास

प्यास बढ़ती जा रही है।
एक पल,
दो पल
हज़ारों साल,
आस बढ़ती जा रही है॥
प्यास...........

× × ×

प्यास सीमित एक कन में,
क्या करूँगा सिन्धु लेकर।
प्यास व्यापक अखिल जग में,
क्या करूँगा बिन्दु लेकर॥
प्यास अविरल,
प्यास साधन,
प्यास तृष्णा,
क्या करूँ सौ वर्ष लेकर
सिद्धि लेकर
तृप्ति लेकर॥
प्यास है मनुहार मादक गा रही है।
प्यास बढ़ती............

× × ×

प्यास घातक।
प्यास घायल॥
प्यास रुनझुन।
प्यास पायल॥
प्यास स्वर संगीत,
मन का मीत।

प्यास वृज के बावरी की प्रीति ।।
प्यास पूनम की रुपहली रात
प्यास भँवरों से कली की बात,
प्यास नभ पर साँवली सी छा रही है ।
प्यास बढ़ती............
प्यास पिक की बोल,
जग का मोल ।
प्यास सरिता में तड़पती सी लहरिया लोल ।।
प्यास धरती पर झुका आकाश,
प्यास बन्धन और यम का पाश
प्यास सरगम के प्रकंपन पर
सुकोमल साज़ ।
प्यास बन में काँपती आवाज़ ।।
प्यास श्यामल मेघ रिमझिम गा रही है ।
प्यास बढ़ती............

× × ×

प्यास ने ही स्वर्ग से मुझको ढकेला
और जग में आ बनी उर का फफोला
प्यास प्रतिक्षण कसकती बन शूल
प्यास धरती पर अनूठी भूल
प्यास विरही के हृदय की हूक
प्यास उनकी साधना है मूक
प्यास का होता नहीं अवसान
प्यास होती जा रही छविमान
प्यास है जो आज तक भरमा रही है ।
प्यास बढ़ती............

□

ममता

ठेस लगी, दर्द हुआ, जाग गये तारे,
अकुलाआ चाँद आज, सो न सका रात भर ।।

× × ×

चाँदी के पलने में,
झूल रही,
छोटी सी लहरी ।

× × ×

वासन्ती रंग,
पीली सी चुनरी,
कजरारे दो नैना,
छलकाती,
शरमाती लख कंचुक,
कर कोमल से,
ममता की,
पतली सी रेशम की डोरी
है खींच रही, ढील रही
ढील रही, खींच रही

× × ×

तट पर सकुचीली, लजवन्ती,
शेफाली की चूड़ी बज जाती
पग नूपुर
कुछ गाते
हट जाता पट,
पीते रस, नैना अमराई के दो क्षण ।

× × ×

तब आती सुध, प्रियतम की उसको,

खो जाती न जाने किस दुनिया में,
व्याकुल हो जाती,
अकुलाती, अफनाती
भर जाती, जब
पीड़ा,
वह करुणा की छोटी सी रेखा बन जाती ।

× × ×

तब सहसा वह पलने की ममता मुस्काती
दुख सारा मिट जाता,
दे छोटा सा चुम्बन
वह, गाती रह जाती, वह गाती रह जाती ॥

□

अश्रु-माला

चाँदनी चंचल, लहर को
थपकियाँ दे सुला रही थी।
नवल अनुपम मधु—
क्षितिज पर—
ज्योति सी लहरा रही थी ॥
गिरि की हरियाली चतुर्दिक
छटा सी दर्शा रही थी
सुमन झुरमुट में, कली सी
स्वयं से शर्मा रही थी ॥

दूर कुटिया में अकेली
गत दिनों को सोचती थी
आँसुओं से आँख धोकर
वह किसी को जोहती थी

बिखरी आशाओं को, टूटी
मोतियों सी पिरो रही थी
चाँद सी वह—
चाँदनी में,
चाँद को ही ढूँढ़ती थी ॥

आयेगा मधुमास तब भी—
शिशिर का ही हास होगा
क्या कभी जर्जर कुटी में
उर-प्रभू का बास होगा

कोकिला कूकेगी 'कू', 'कू'
पुष्प का शृंगार होगा
प्रेम ही होगा चतुर्दिक
नेह मेरे साथ होगा

व्यथित-उर से आज बोझिल हृदय खोई जा रही थी
आँसुओं की गूँथ माला वह उसे पहना रही थी।

□

देवी से एक प्रश्न ?

द्वार पर तेरे खड़ा हूँ लिये भक्ति-भावना।
सुनले मातृ शारदे, कर दे सफल साधना॥
× × ×

चूर चूर, छार छार।
आसुरी माया हज़ार॥
पूजता हूँ पाँव तेरे।
कर दे पूर्ण कामना॥
× × ×
उषा खोल प्राची द्वार।
मौन गाती है मल्हार॥
गा रहे हैं वृक्ष सकल।
सरित सलिल शीत धार॥

किन्तु एक तेरे बिना सो रहा मनुज, निहार।
बजा वीणा, हंस वाहिनि भर दे भव्य भावना॥

ऋतु वसन्त सुख अपार।
फूल फूल भरा प्यार॥
झूम रही लता बेलि।
भ्रमर दल करता बिहार॥
× × ×
जीर्ण शीर्ण व्यथित सकल।
क्यों मनुष्य आज विकल॥
क्यों है झेलता वह आज।
दुःख का असह्य भार॥

क्यों है आज हो रही ऐसी सबकी भर्त्सना।
तेरे द्वार पर खड़ा हूँ लिये भक्ति भावना॥

देवी का उत्तर

स्वार्थ-वश ही करता आज
मनुज जग में निज सारे काज
चाहे पूजे देव या कि
जा पढ़ता मस्जिद में निमाज

× × ×

ढोंग तीर्थयात्रा को ही समझ रहा है कर्म
पाठ महाकाव्य का ही समझ रहा है धर्म
रूढ़ियों में बँधा आज, करता घूस ले के व्याह
तोड़ दिये उसने नियम, छोड़ दी पुरानी राह

× × ×

सत्य की न लगन उसको
भक्ति की न उसे चाह।
भ्रान्तियों में भटक रहा
ऋद्धि, सिद्धि की न थाह ॥

× × ×

ज्ञान-रहित, व्यथित, विकल
छोड़ दी है साधना
इसीलिए आज वह
पा रहा है ताड़ना

× × ×

रूढ़ियों को तोड़ स्वयं
सत्य में करेगा होड़
मार, काट, हनन छोड़
लेगा सही ओर मोड़

× × ×

तभी सफल होगी तेरे—
हित की मधुर भावना
तभी पूर्ण होगी कवि—
तेरी दिव्य साधना

□

गीत

मुझे संकेत से
प्रियतम, बुलाओ मत।
मिलन के साथ बिछुड़न है
इसे तुम भूल जाओ मत ।।

(१)

धड़कता उर—
शिथिल सब अंग हो जाते।
सिहरती मैं—
शरम से, नैन झुक जाते।
प्रवाहित-रक्त, मुख पर रुक
पसीना बन,
निकल पड़ता।
बढ़ा कर पाँव—
मैं लखती,
न कोई हो मुझे लखता
मिलन का सूत कच्चा है
इसे तुम तोड़ डालो मत
मुझे संकेत से प्रियतम बुलाओ मत।

(२)

रूपहली रात पूनम की—
अमा को देख कहती है ।।
उषा, दिनमान के बाहों में—
बँध कर, मौन कहती है ।।
पुलिन से—
प्रेम में टकरा, लहर जब,

चूर होती है।
तिमिर के जाल में फँस,
चाँदनी, जब फूट रोती है
गगन गंगा में कोमल-फूल
खिल जब मुरझुराते हैं
सितारे,
झिलमिलाते से
सुबह सन्देश लाते हैं, कि
मिलन का गीत साथी गुनगुनाओ मत
मुझे संकेत से प्रियतम बुलाओ मत।

(३)

खली जब एकता,
मन में जगी जब,
द्वैत की ज्वाला—।
बनाकर, काठ का पुतला
उसी को जान दे डाला।
सुशोभित,
भाव,
कर्मों से, मनोहर ज्ञान का प्याला,
पिला दी क्यों, मुझे प्रियतम
तुम्हीं ने भक्ति की हाला।
भटकने को मुझे फिर छोड़—
तुम कौतुक लगे लखने,
अभागी थी,
धरा पर आ,
लगी मैं सिसकियाँ भरने।
मुझे इस द्वैत से अद्वैत की
झाँकी दिखाओ मत॥
मिलन के साथ बिछुड़न है इसे तुम भूल जाओ मत॥

□

कब तक

कब तक
मेरी ज़िन्दगी की किताब पर
काली स्याही में
कलम की नोक से, लिखते रहोगे !
और मैं,
चुप-चाप, तुम्हारा नाम,
हाशियें पर जोड़ता रहूँगा ॥
क्या यह सम्भव नहीं कि
कोई गाढ़ा-रँग,
बिखर जाये,
और मेरा और तुम्हारा नाम
एक हो जाये,
या मेरे नाम का हर अक्षर
रेशे रेशे
बिखर कर
तैरते, तैरते
तिरोहित होने लगे ।
आखिर कब तक
काँटों पर,
मेरे अङ्गों को
टाँगे रहोगे,
और मैं इस, शूली-वेदना को
नकारता रहूँगा !
क्या कभी कोई नाद न होगा
कि मैं दिवा स्वप्न की मरीचिका छोड़
वाष्प सा—
धीरे धीरे
विलीन हो जाऊँ !
बोलो !

□

अगली पीढ़ी

माँ,
इस बच्चे को दूध मत पिला
इसकी धमनी को तराश
सारा रक्त निकाल
भरदे जीवन की सारी कटुता।
ताकि यह तुझे तो क्या
अपने आप को भी न पहचान सके।

× × ×

पिता से पाये सारे संस्कार,
विवेक, बुद्धि, ज्ञान,
कुरेद कर फेंक दे
ताकि
यह भावी लौह पुरुष बन सके!

× × ×

इसके हाथों में हिंसा,
पगों को दलन
पेट को अनर्गल पचाने की शक्ति,
जिह्वा में कटुता
बुद्धि में कुटिलता
संस्कार में मक्कारी
आचरण में निर्लज्जता
भरदे!

× × ×

तब यह आगामी पीढ़ी में
पूजा जायेगा

और हर चौराहे पर
लाखों का सर
श्रद्धा से झुक जायेगा !

× × ×

यदि कहीं
तूने दूध पिलाया,
ज्ञान, भक्ति, और कर्म, से नहलाया,
पूर्वजों के यश तले, बैठाया,
अर्थात् एक इन्सान बनाया
तो यह बे मौत, मारा जायेगा ।
और आने वाले समय में
सर-धुन, पछतायेगा,
और तेरा दूध लजायेगा !

□

कविता

कोहरे से आच्छादित शिखर को,
कभी-कभी बरफ़ की चादर
ढँक लेती है !
इसका यह अर्थ तो नहीं,
कि पर्वत का अस्तित्व मिट जाता है ।
या इस कठोर दिखने वाले पहाड़ में
रत्न नहीं,
या इसके अन्तर में
शीतल-निर्झरणी नहीं

× × ×

प्रातः इस पर बिखर कर
टूटती किरणों को, क्या मालूम
कि हर चीज वह नहीं होती
जो दिखती है !

× × ×

यह नैनों का तिलिस्म
या मन का भ्रम
हो सकता है, जो
समय के पोरों पर
विगलित
माहौल को क्या
अपने आप को भी पहचानने नहीं देता !

□

एक अनुभूति

फूलों के हार का टूटना
या साँसों का जुड़ना,
मात्र संयोग,
तुम्हारे लिये हो सकता है !
पर मैं तो,
हर अच्छे और बुरे क्षण में
पूरी सहजता से,
तुम्हारे नाम के साथ
जी रहा हूँ !

□

बसन्त

बना रहा है कोई आज रँगोली
अपनी उगलियों के पोरों से
धरती पर,
शायद किसी वासन्ती का आगमन है !

× × ×

हवायें आज—
अलसाई,
उन्मादी सी
महक के पीछे, पीछे
घुल मिलकर,
कोयल के पंचमी-स्वर में
ढूँढ़ रही है उसे
जो गंध है
स्पर्श, तन्मयता और तलाश है
फैल रहा है सृष्टि में कोई जादू,
शायद किसी वासन्ती का आगमन है !

× × ×

हीरे की कनी,
और सोने, बिखराये गये हैं खेतों में !
बोये गये हैं—
कण्ठों में गीत !
पलाश,
रजनी-गन्धा, गुलमुहर
सभी बन गये हैं मीत !
तितली के पंखों पर

सजाये गये हैं सपने,
दूर कहीं—
उठती अलाप
एक थाप
शायद किसी वासन्ती का आगमन है।

× × ×

श्वेत आँचल पर,
निर्झरों के,
ठहरी हुई है पिपासा,
चाँदनी है शरमायी
अँगड़ाई ले रहे
भ्रमरों के कपोल,
अमराइयों की धड़कन है
कोकिलों की सिहरन में
हर तरफ छाया है—
खुमार—
बन रही है लालसा
क्यों प्रश्न
क्या किसी वासन्ती का आगमन है।

□

मुक्तक

(१)

रूप की बात और होती है
प्यार की आँख सदा रोती है
क्या बहारों से कोई बात करे
ज़िन्दगी दर्द ओढ़ सोती है

(२)

रूठ जाये तो रात हो जाये
मुस्कराये तो भोर भी गाये
लाख मधुपात्र टूट जायेंगे
देख दर्पण कभी जो शर्माये

(३)

यह भी सच है कि तुम हठीले हो
रूप, रस, गन्ध, में अकेले हो
किन्तु सुन लो ज़रा आकाश में उड़ने वाले
तुम भी पानी के इक बबूले हो

(४)

मैंने फिर आज तुम्हें टेरा है
चित्र शायद मेरा अधूरा है
तूलिका काँपती है हाँथ में क्यों
क्या तुम्हें लाज ने आ घेरा है

(५)

तुमने आज फिर मुड़ के देखा है
भाग्य ने खींची नयी रेखा है
देख कर भी न देखने वाले
क्या तेरा प्यार भी एक धोखा है ?

(६)

बादलों के नैन में पानी है
चाँदनी की व्यथा पुरानी है
ओस रोती रही जिसे अब तक
वह अँधेरे की इक कहानी है

(७)

टूट गये सब स्वप्न सुहाने, रूठ गये सुख चैन
अब तो सूनी साँझ रह गयी उसके आगे रैन।
ओ नीले आकाश देख ले एक यहाँ तेरा साथी है
जिसने नींद चुरा कर छूछे छोड़ दिये है नैन

(८)

मत जलाओ फिर मुझे तुम आज,
मैं अभी तो—
रात भर,
धक धक चमकते,
तारकों के साथ जलकर
सुबह जमुना की लहर पर
डूबती आकाश की
स्वर्णिम झलक के डूबने
के साथ ही तो बुझ गयी हूँ ?
मत जलाओ........

(९)

हर आदमी मेरे लिये भगवान जब हो जायेगा
तब उसी के गर्त में मेरा अहम् खो जायेगा।
यदि संजोकर भाव की बाती जला लूँ दीप मन का
तो सुना है ज्योति में जीवन विलय हो जायेगा ।।

(१०)

ज्योति में जब चाँदनी की हर किरण हैरान होती है।
जिन्दगी के दंश की असली वहीं पहचान होती है।।
भूल की गलियों में भ्रम, कब तक पलेगा—सोच लो।
टूट कर गिरने से पहले, हर खुशी वरदान होती है।। □

गीत

जिन्दगी की धार पर, उम्र के कगार पर—
कितनी बार और डसेगी निदान जिन्दगी

दूर कहीं शोर है—
साँझ है न भोर है
उठ रहा धुआँ, धुआँ
फिर भी कुछ अंजोर है

इसी ऊहापोह में, काम, क्रोध मोह में
कितनी बार और कसेगी निहाल ज़िन्दगी

मन में कुछ उभार है
झनझनाता तार है
गीत जो न बन सका
स्वर वही मल्हार है

हर निमिष के ताल पर, बिन्दी धर के भाल पर।
कितनी बार और ढ़लेगी निढ़ाल जिन्दगी।।

चलो इसे छोड़ दें
नेह - नीड़ तोड़ दें
कुन्जगली, माधवी
की ओर तरी मोड़ दें

यहीं ओर छोर से, घेर चारो ओर से—
कितनी बार और छलेगी विशाल ज़िन्दगी

□

गजल

आप मेरे जीवन में इस तरह आये
जैसे सोते में कोई मुस्काये

स्वप्न टूटा तो फिर लगा जैसे
कोई पंछी गगन में उड़ जाये

मेरी इच्छायें मौन सी यूँ हैं
जैसे विष खाके, कोई सो जाये

यह घनेरी सी शाम तेरी है
तू जो आजाये तो सँवर जाये

तेरे बिन चाँदनी है यूँ मुझको
जैसे हर पुण्य, पाप बन जाये

तू तो ऐसे बिसार बैठा सब
जैसे नागिन डसे, पलट जाये

□

गीत

कुछ करो, कुछ न करो, जीवन यूँही चलता रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलती रहे

यह समर्पण के मधुर क्षण
पर कटीली कामना

कुछ झुको कुछ न झुको, उन्माद सी बढ़ती रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलती रहे

मोर - पंखी रात यह,
मुँह फेरती पागल सुबह

शिशु - अरुण के ताप में, यूँ जिन्दगी गलती रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलतो रहे

डगमगाते भूल के क्षण
काँपती घायल व्यथा

झिलमिलाते स्वप्न में कुछ पीर सी पलती रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलती रहे

गूँजती सी शाम यह
हर साँस में मुरली मुखर

बरसती बरसात में, मनमोरनी रटती रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलती रहे

यह सहज संयोग—
आती याद क्यों भूली कथा

दीप लौ ज्यों ओट में बुझती रहे, जलती रहे
एक पल इस भीड़ में रुक कर कोई छलती रहे

□

गीत

ज्योति झिल-मिल काँपती दीपों में रोती रह गयी।
ज़िन्दगी तट पर मधुर सपने सँजोती रह गयी ।।

चाँद था, तारे थे, अपना भी
कभी आकाश था
आँख फिर क्यों अश्रु के—
मोती पिरोती रह गयी

जिन्दगी तट पर मधुर सपने सँजोती रह गयी ।।

दुख मिला जग को, गगन को दर्द
मन को टीस सी।
साँस क्यों उस्वाँस की
आँचल भिगोती रह गयी

जिन्दगी तट पर मधुर सपने सँजोती रह गयी !!

एक कन स्वाती न पाया है—
तृषित चातक अभी।
इसलिए सरि में, लहर भी
लड़खड़ाती रह गयी।

जिन्दगी तट पर मधुर सपने सँजोती रह गयी !!

□

गीत

नया प्रकाश मिल रहा है देश के विहान को।
नई जवानियाँ मिली हैं आज नवजवान को ॥

कर्म देवता की आज हो रही है आरती
गीत श्रम के मुक्त होके गा रही है भारती।
शक्ति और शिल्प के सुमन चढ़ाये जा रहे
भावना की झाँकियाँ हैं नारियाँ सँवारती ॥

जागरण का शंख-नाद पथ प्रशस्त हो रहे
हर प्रमाद इस अनन्त पर हैं अस्त हो रहे।
खिल रहे कमल नये कि भोर गुनगुना रहा
हर विकास के ही साथ पाप ध्वस्त हो रहा ॥

ज़िन्दगी नई मिली है ग्राम के किसान को
नई जवानियाँ मिली हैं आज नवजवान को

सूखने लगे हैं अश्रु हर दुखी के नैन के
साधना ही ला रही है दिन हमारे चैन के।
भाग्य जग गये हैं कि चाँद मुस्करा रहा
लुप्त हो रहे हैं स्वप्न उस अँधेरी रैन के ॥

बोलते विहग, कि गा रहा मधुर मराल है
झूमता पवन, कि टेसुओं का गाल लाल है
मन्द मन्द नूपुरों की ध्वनि रसीली चाल है
हिम शिला सा जगमगा रहा हमारा भाल है

अर्घ दे रहा हूँ देश के श्रमिक महान को
नई जवानियाँ मिली हैं आज नवजवान को

□

श्रम देवी

काट रहा गेहूँ अलबेला, झूम झूम मैदान में
ठुमुक ठुमुक पायलिया बजती गोरी की खलिहान में

उषा भोर में इठला कर जब ।
जग की नींद चुराती ।।
तभी सलोनी साँवर के सँघ ।
मेड़ों पर मुस्काती ।।

मृदुल पंछियों के कलरव में ।
पायल स्वर झंकाती ।।
चूम चूम सरसो के गालों को ।
सौ सौ है बलखाती ।।

हाथ में हँसिया, कटि टोकरिया ।
नैन बड़े कजरारे ।।
प्रीतम की यह सोन-चिरैय्या ।
लोनी साँझ सकारे ।।

यौवन की नवकली, सोहागिन ।
पट सतरंगी धारे ।।
श्रम देवी सी, ग्राम देवता का ।
सौभाग्य सँवारे ।।

अपने ही डेवढ़ की दीपक, मादकता मुस्कान में ।
ठुमुक ठुमुक पायलिया बजती गोरी की खलिहान में ।।

बाबा के आँखों की तितली—
सास की नई जुन्हैय्या
डगर डगर की दुलहिल है वह—
बलिहारी है कुंवर कन्हैय्या

लहरों की यह बहन रसीली
भाये ताल तलय्या
माटी से सोना उपजाये—
इसकी नरम कलइय्या

लौट रहे चौपायों ग्वालों—
के सँघ धूल उड़ाती
संध्या को वह थकी थकाई
अपने घर आ जाती

अन्नपूर्णा दूध, दही की
घर में नदी बहाती
थकी चाँदनी सी रजनी में
सौरभ सी सो जाती

बन बगिया की बेला, जूही, पुलकन वह सुनसान में।
ठुमुक ठुमुक पायलिया बजती गोरी की खलिहान में ॥

□

कपोत-कपोती

दोपहर में,
एक झीनी छाँव में,
तरु के, रूके जब आ पखेरू ।
उड़ चलें, आओ बिहँस बोली कपोती,
उस गगन की ओर,
कल संध्या जहाँ हम तुम गये थे ।
सात स्वर से,
सात रँग आकाश में बिखरे जहाँ थे
दृश्य थे उन हिम-गिरों के
स्वर्ण का माथे धरे जो ताज थे,
शान्त था हर छोर,
हम तुम उड़ रहे थे ।
× × ×
याद अब तो आ रहा होगा,
सलोने
बस वहीं कुछ दूर हमसे
एक नीला सा कोई पर्दा टँगा था—
जा न पाये हैं कि जिसके पार
हम, तुम,
यह सुना है नाथ
कि उस पार इसके
एक सुन्दर सा कोई संसार है ।
चाँदी भरी सरिता जहाँ है,
ज्योति जुगनू की है कन कन जिस धरा की,
नाग-मणि की हर डगर पर बत्तियाँ हैं
रँग-बिरँगे हैं पखेरू,
प्यार में डूबी हुई, कुछ अप्सरा हैं
उड़ चलें, आओ वहीं
अब तो यहाँ पर जल रहे हैं
तन, झुलसता है, कि मेरा कण्ठ सूखा जा रहा है ।
× × ×

हँस पड़ा
यह सुन, पखेरू
श्याम शुभ्र कपोत,
पँख फैलाया, हिला कुछ
और फिर कहने लगा यूँ प्रेयसी से
ओ, सुपंखी,
तुमने इस संसार की गुरुता न आँकी।
सुख, और दुख,
यह तो अपने ही परिधि के दास हैं,
किन्तु जीना दूसरों के हेतु ही बस सार्थक है
तुमने न देखा, कि यह नाविक,
श्रमिक, हलधर, बेचारे,
लड़ रहे हैं
दोपहर सी ज़िन्दगी से।
पड़ गये छाले—
फफोलों से भरी हर रात इनकी।
चू रहा मकरन्द बन करके पसीना।
उड़ चलें आओ,
और दुख बाँट लें इन तृसित जन के
कर के साया एक पल
दो पँख फैला, मुक्त अपने।
बिहंस आया मन, पखेरू का यह कहकर,
और कुछ आवाज़ भी भर्रा गयी थी।
तभी धीरे से युहीं बोली कपोती
नाथ तुम ही इस हृदय के स्वर्ग हो।
हुलस आया मन पखेरू का यह सुनकर
प्यार से उसने कपोती को निहारा।
और फिर पर फड़फड़ा कर उड़ गये,
वे न जाने किस लगन में,
किस दिशा को।

□